International Journal of Applied Research 2017; 3(5): 830-832

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(5): 830-832
www.allresearchjournal.com
Received: 26-03-2017
Accepted: 27-04-2017

बबिता
शोध छात्रा, भारतीय भाषा केन्द्र, भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

Correspondence
बबिता
शोध छात्रा, भारतीय भाषा केन्द्र, भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

स्त्री अस्मिता का मानवतावादी स्वरूप

बबिता

सारांश
समाज और साहित्य में मानवतावाद की बात जब भी होती है तो आदर्श हमेशा उसके केन्द्र में होता है। लोगों को यथार्थ से अनभिज्ञ बनाए रखने और अपने विशेषाधिकारस्वरूप दुर्बलों का शोषण ज़ारी रखने का वर्चस्ववादियों के पास यह सबसे मजबूत हथियार है। भारतीय स्त्रियाँ भी सदियों से इसी आदर्श षड्यन्त्र का शिकार रही हैं। लेकिन अब जब इन्होंने इस शोषक षड्यन्त्र के विरुद्ध साहित्यिक अभिव्यक्ति की शुरुआत की है तो सामन्तवादी–पुरुषवादी शक्तियों द्वारा इसे ही अनैतिक और अमानवीय सिद्ध करने का षड्यन्त्र किया जा रहा है। जबकि सच यह है कि सम्पूर्ण अस्मितामूलक साहित्य सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से मानवतावादी है।

कूट शब्दः मानवतावाद, अस्मिता, विमर्श, स्त्रीवाद, शोषण, पुरुषवाद, पितृसत्ता ।

प्रस्तावना
पितृसत्ता का चरित्र हमेशा से दोहरा रहा है, पुरुषों के लिए सारी सुविधाएँ, आजादी (कुछ मायनों में उच्श्रृंखलता की हद तक), श्रेष्ठत्व एवं सम्पूर्ण की भ्रामक अवधारणा की प्रतिष्ठा और स्त्रियों के लिए उतनी ही वर्जनाएँ, बंदिशें, घुटन और कमजोर–लाचार का ठप्पा। इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्री को कदम–कदम पर दबाया है, उपेक्षित किया है, शोषित किया है, उसके मानवाधिकारों का हनन किया है।
एक स्त्री की अस्मिता भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है, जितनी पुरुष की। स्त्री अस्मिता की लड़ाई पितृसत्ता की इसी दोहरी मानसिकता से है– जो स्त्रियों में कमतरी के संस्कार भरती है, उसे एक सम्पूर्ण मनुष्य मानने से इंकार करती है। स्त्री अस्मिता का संघर्ष मनुष्य होने की गरिमा का संघर्ष है, एक मनुष्य के रुप में अपनी पहचान और सम्मान का संघर्ष है।
भारतीय संदर्भ में अस्मिता विमर्श पर इसके पश्चिम से आयातित होने का आरोप लगाकर इसे खारिज करने की कोशिश की जाती है, इसके बारे में काफी भ्रामक अवधारणाओं को दुष्प्रचारित किया जाता है, इन दुष्प्रचारों का खंडन करते हुए प्रभा खेतान लिखती हैं–
''समस्या यह है कि एक तरफ तो नारीवाद अपने पश्चिमी मूल के कारण विवाद ग्रस्त हुआ है और दूसरी तरफ राष्ट्रीय स्वतंत्रता और पहचान की उसकी विचारधारा, रणनीति और परियोजना विशिष्ट किस्म की है। इस विशिष्टता के कारण यह होता है कि मुक्तिकामी मानवाधिकार के लिए किए जाने वाले अन्य आन्दोलनों से नारियाँ नहीं जुड़ पाई हैं। इसी सिलसिले में यह भी मान लिया जाता है कि नारीवाद अराजक मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है, सामाजिक व्यवस्था की चूलें हिलाकर रख देना चाहता है और इस विचारधारा से प्रभावित स्त्रियाँ पुरुषों से नफरत करने लगती हैं। दरअसल ये सभी धारणाएँ भ्रामक हैं। नारीवाद एक विचारधारा और जीवन शैली है। चूँकि स्त्री भी सोचना–समझना जानती है इसलिए मानवाधिकार की विचारधारा और उससे प्रभावित आन्दोलन स्त्री–जीवन के लिए परिवर्तनकामी है।''[1]
शोषण, जुल्म, प्रताड़ना हर स्त्री के जीवन का कड़वा सत्य है, जो सिर्फ स्त्री होने के नाते उसके हिस्से में आता है। कितनी बड़ी विडम्बना है, पितृसत्ता का कैसा कुचक्र है कि स्त्री होना तमाम परेशानियों का कारक बन जाता है। रोहिणी अग्रवाल जाहिदा हिना की बात का उल्लेख करती हैं–
''पाकिस्तानी एक्टिविस्ट जाहिदा हिना का मानना है कि स्त्री का इतिहास हर देश और व्यवस्था में कमोबेश एक–सा है– तिरस्कृत, लांछित और दमित।''[2]
सीधी–सी बात है कि जब स्त्रियों के प्रति शोषण और प्रताड़ना का स्वरूप देशीय हो सकता है तो उसके खिलाफ संघर्ष और प्रतिरोध विदेशी कैसे हो सकता है। इस सम्बन्ध में उमा चक्रवर्ती का कहना बिल्कुल उचित है–

''यह हमारा अपना स्त्रीवाद है, यह कोई आज का या पश्चिम से आया हुआ स्त्रीवाद नहीं है। स्त्रियों का स्वयं को पहचानना या अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करना, इसके लिए सामाजिक या सांस्कृतिक स्तर पर पुरुषों के द्वारा उठाये जाने वाले स्त्री–विरोधी प्रश्नों को खारिज करने के लिए उन्हें उलट देना, उन प्रश्नों की जगह अपने प्रश्न खड़े कर देना दुनिया के सभी समाजों में बड़े पुराने जमाने से पितृसत्ता के उदय से ही चला आ रहा है। इसे पश्चिमी देशों से आयी हुई चीज समझना और यह समझना बिल्कुल गलत है कि हम पिछड़े हुए हैं, इसलिए हमारे यहाँ पितृसत्ता कायम है। पितृसत्ता अत्यन्त बढ़े हुए देशों में भी कायम है और उसका विरोध भी तभी से हो रहा है– यहाँ भी और वहाँ भी जबसे यह कायम हुई है।''[3]

स्त्री अस्मिता के संघर्ष को कुंद करने के लिए इसके बारे में अनेक नकारात्मक बातें फैलाई जाती हैं, जिनमें से एक यह भी प्रचारित किया जाता है कि स्त्री विमर्श परिवार को तोड़ने वाला है, स्त्री अस्मिता की चेतना से लैस स्त्रियाँ लड़ाकू, घर तोडू होती हैं, जबकि वास्तविकता यह नहीं है, स्त्री अस्मिता की चेतना से लैस स्त्रियाँ मानवीय मूल्यों की पक्षधर होती हैं, वो मानवतावादी होती हैं, उनका संघर्ष अमानवीय मूल्यों के प्रति होता है न कि घर–परिवार के प्रति। प्रभा खेतान लिखती हैं––

''कहा जाता है कि नारीवाद पारिवारिक मूल्यहीनता को प्रश्रय देता है। या फिर वह पारिवारिक संरचनाओं को तोड़ देना चाहता है। वास्तविकता कुछ और है। अगर पारिवारिक संरचनाएँ मानवीय हैं तो अपनी वैचारिक संभावनाओं सहित नारीवाद परिवार और समाज के मानवीय मूल्यों को नष्ट करने के बजाय बचाना चाहेगा। वह पारम्परिक समाज–व्यवस्था को परिवर्तित जरूर करना चाहता है और बदलाव को टूटना नहीं कहा जा सकता। परिवार स्त्री की सबसे पुख्ता जमीन है। यदि इस जमीन पर खड़े होकर वह यथास्थिति के परिवर्तन के पक्ष में है और अन्य व्यापक सामाजिक जिम्मेदारियों को स्वीकारना चाहती है, तो इसे गलत क्यों कहा जाना चाहिए ?''[4]

परिवार में जब मानवीय मूल्यों को प्रश्रय दिया जायेगा तो सबके लिए , खास तौर से स्त्रियों के लिए भी एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण होगा, जिनसे एक स्वस्थ समाज, राष्ट्र की स्थापना में सहायता मिलेगी।

परिवार और विवाह के परिप्रेक्ष्य में स्त्रियों पर घरेलू हिंसा की सच्चाई किसी से छिपी नहीं है, औरत चाहे किसी भी धर्म, जाति, क्षेत्र की हो, अमीर या गरीब हो घरेलू हिंसा उसके जीवन का एक कटू सत्य है। इससे यही सिद्ध होता है कि स्त्रियों के प्रति हिंसा उनकी परिस्थितियों से कहीं ज्यादा उनके लिंग पर आधारित है। इसी क्रम में मातृत्व अर्थात सृजन की क्षमता स्त्री की महत्वपूर्ण शक्ति है, हालांकि पितृसत्ता मातृत्व को महिमामंडित तो करती है, लेकिन उसकी व्याख्या अपनी सुविधानुसार करती है, जिसके फलस्वरूप कई बार स्त्री के हिस्से अनिच्छित बलात गर्भ का भार आता है। कन्या भ्रूण हत्या का अपराधबोध तो आता ही है। स्त्री विमर्श इन सभी अमानवीय परिस्थितियों से संघर्ष करता है, इन्हें बदलना और खत्म करना चाहता है। प्रभा खेतान लिखती हैं–

''पितृसत्तात्मक समाज की स्त्री–विरोधी परम्पराओं का आयाम पूरी तरह विशिष्ट है। ये परम्पराएँ स्त्री को घर सौंपती हैं, बच्चों का भरण–पोषण सौंपती हैं। मानवता के नाम पर वृद्ध और बीमारों के लिए उससे निःशुल्क सेवा लेती हैं और बदले में उसके द्वारा की गई सेवाओं का महिला–मंडन कर अपने कर्तव्यों की इतिश्री कर लेती हैं। स्त्री भूखी है या मर रही है, इसकी चिंता किसी को नहीं होती।''[5]

सच है, स्त्री को झूठी प्रशंसा नहीं अधिकार चाहिए। देवी बनाकर महिमामंडन नहीं, मानवी के रूप में समानता चाहिए। गोपा जोशी एक बड़े सत्य की ओर इशारा करती हुई लिखती हैं–

''महिला की माँ पत्नी, गृहणी की भूमिका का महिमामंडन समाज की पचास प्रतिशत जनसंख्या यानी नारी के श्रम का चालाकी से मुफ्त में उपभोग करने की नियति से किया गया है।''[6]

देह की मुक्ति का प्रश्न स्त्री अस्मिता विमर्श का महत्वपूर्ण मुद्दा है। स्त्री का अपनी देह पर अधिकार है, वह अपनी देह की मौलिक जरूरतों को समझती है, उसे जबरदस्ती के थोपे गए शारीरिक सम्बंधों (भले ही वो पति के साथ ही क्यूँ नहीं) से आजाद करना चाहती है, वह अपनी इच्छा–अनिच्छा को दर्ज कराना चाहती है, बिना किसी अपराध बोध के। किन्तु पितृसत्ता बिना स्त्री की जरूरतों को समझे, उसकी इच्छा का सम्मान किये बगैर खोखली नैतिकता की दुहाई देकर इसे यौन उच्श्रृखंलता का नाम देती है। रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं–

''मर्दवादी आलोचना समकालीन स्त्री विमर्श को पितृसत्तात्मक व्यवस्था का अतिक्रमण कर अपने लिए मानवीय स्पेस की आकांक्षा करती स्त्री–मुक्ति की अवधारणा के रूप में नहीं पढ़ती, देह–विमर्श में गूँथकर थू–थू करती है।''[7]

शिक्षा, स्वतंत्रता, आर्थिक समानता, न्याय आदि मनुष्य के स्वस्थ विकास की अनिवार्य शर्तें हैं। कहना न होगा कि ये मुद्दे स्त्री अस्मिता विमर्श की प्रमुख माँग हैं, क्योंकि इनके बिना स्त्री सशक्तीकरण संभव नहीं है। हालांकि भारतीय संविधान में हिन्दू कोड बिल–1956, तथा और भी अन्य धाराओं द्वारा स्त्री के अधिकारों की रक्षा का प्रावधान अवश्य हुआ है, लेकिन इसके बावजूद आज भी स्त्री का शोषण चेहरे बदल–बदल कर हर जगह मौजूद है। इसके कारणों की पड़ताल करते हुए रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं–

''1956 में लागू हिन्दू कोड बिल तथा भारतीय संविधान की धारा 15 तथा 16 ने हालांकि कानूनी एंव संवैधानिक तौर पर भारतीय स्त्री के मानवीय एवं मौलिक अधिकारों की रक्षा का दायित्व लिया है और मिताक्षरा तथा दायभाग सम्प्रदाय की विषमतामूलक सिफारिशों को निरस्त करते हुए ''हिन्दू उत्तराधिकारी कानून'' ने बीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध की तुलना में स्वातंत्र्योत्तर भारत की स्त्री को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता एवं समानता प्रदान की है, लेकिन फिर भी न्याय पाने की जटिल एवं सुदीर्घ प्रक्रिया में सामंती संस्कारों से ग्रस्त कानून के पुरुषवादी चेहरे को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता।''[8]

स्त्री विमर्श कानून के इसी पुरुषवादी चेहरे से लडता है, और स्त्रियों के लिए न्याय की राह को अपेक्षाकृत सुगम बनाने की प्रक्रिया में उनका साथ देता है।

स्त्री के संघर्ष का रास्ता बहुत लम्बा है, जिसे एक झटके में तय नहीं किया जा सकता, लेकिन यह भी सच है कि अब तक का जो प्राप्य है इसी जागृत संघर्ष का परिणाम है। स्त्री अस्मिता विमर्श का प्रमुख उद्देश्य समाज में सम्पूर्ण मानव के रूप में स्त्री की प्रतिष्ठा एवं समता, स्वतंत्रता, बंधुता, बहनापे की स्थापना के माध्यम से मानवता का प्रसार है। सामान्य रूप में स्त्री अस्मिता विमर्श स्त्री अधिकारों का संघर्ष प्रतीत होता है, लेकिन यह उससे भी आगे बढ़कर मानवता का संघर्ष है, क्योंकि समाज में मानवता तभी फलित हो सकती है जब समाज हर तरह के जातीय, लिंगीय, क्षेत्रीय, धार्मिक आदि शोषण एवं वर्चस्व से मुक्त हो।

संदर्भ सूची

1. प्रभा खेतान 'उपनिवेश में स्त्री–मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। प्रथम संस्करण–2003, पृ0–10–11।
2. रोहिणी अग्रवाल 'स्त्री लेखनः स्वप्न और संघर्ष', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। प्रथम संस्करण–2011, पृ0–244।
3. उमा चक्रवर्ती, 'आज का स्त्री आन्दोलन', संपादक–रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, ग्रंथशिल्पी प्रकाशन, पृ0–13।
4. प्रभा खेतान 'उपनिवेश में स्त्री–मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ', पृ0–11।

5. वही, पृ0–14।
6. गोपा जोशी, 'भारत में स्त्री असमानता',हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, संस्करण –2006, पृ0–32।
7. रोहिणी अग्रवाल, 'स्त्री लेखनः स्वप्न और संघर्ष', पृ0–114।
8. रोहिणी अग्रवाल, लेख–भारतीय उपमहाद्वीप का स्त्री–लेखन, 'आलोचना', सहस्त्राब्दी अंक चौदह– जुलाई–सितम्बर–2003, प्रधान संपादक–नामवर सिंह, पृ0–180।